स्वामी श्री अग्रदेवाचार्य कृत
श्रीरामप्रपत्तिः

स्वामिन् ते शेषभूतोऽहं भोग्यस्ते रक्ष्य एव च।
अकिञ्चनोऽनन्योपायस्त्वत्कैङ्कर्यैकभोग्यकः ॥ १ ॥

पण्डित रामवल्लभाशरण कृत
संस्कृत-हिन्दी भावबोधिनी टीका

सीतानाथ समारम्भां रामानन्दार्य मध्यमाम्।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे श्रीगुरु परम्पराम्॥

श्रीस्वामिरामानन्दाचार्यप्रभृतयोऽस्मदाचार्यपर्यन्ताः श्रीरामानन्दानुयायिनस्तु स्वशिष्यान् प्रति प्रपत्तिमनुना प्रकारेण कारयन्ति -

हे स्वामिन् अहं ते तव शेषभूतः तव शेषतां प्राप्तः नत्वन्येषां केषांचिद्देवानामितिभावः। ते तव भोग्यः तवैव भोक्तुं योग्यः। तथा अहं रक्ष्यः रक्षितुं योग्यः रक्षणीय इत्यर्थः। एव कारेण श्रीरामादन्येन जीवानां रक्ष्यत्वं वार्यते जीवाः श्रीरामेणैव रक्षणीया न त्वन्यैरित्यर्थः। अकिंचनः श्रीरामादन्यत् किञ्चन न विद्यते परायणं यस्य सः अर्थात् - "त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखात्वमेव। त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम रामदेव ॥" इत्युक्त प्रकारेण श्रीरामएव मे सर्वस्व भूत इत्यर्थः। अनन्योपायः न विद्यते अन्य उपायोयस्य सः अनन्योपायः अर्थात् श्रीरामप्राप्तौ श्रीराम एव उपायभूतः नतु तत्प्राप्तौ साधनान्तरं भवति यतः "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्" इतिश्रुत्या भगवत् कृपैक लभ्यत्वं निश्चीयते। त्वत्कैङ्कर्यैकभोग्यकः त्वत् तव कैङ्कर्यमेव एकं भोग्य यस्य सः नतु विषयभोग्यत्वम्॥ १ ॥

हे स्वामिन् ! मैं आपका शेषभूत हूँ। आपको छोडकर किसी अन्य का मैं शेष नहीं हूँ। हे श्रीरामजी ! मैं आपका उसी प्रकार शेष हूँ जैसे स्त्रक् चन्दन कुसुमादि वस्तु पुरुष के शेष हैं अर्थात् जीवों से यथारुचि विनियोग करने योग्य हैं। उसी प्रकार मैं जीव भी आपके यथारुचि विनियोग करने योग्य हूँ। अर्थात् जीव को भोगने में ईश्वर स्वतन्त्र है। वो जिस प्रकार से इसको भोगे जहां चाहे वहां इसको रखें। जीव को उसी प्रकार से रहना होगा जैसे चन्दन कुसुमादि पुरुष से कुछ नहीं कह सकते पुरुष जब जैसा चाहे तब तैसा उसको अपने भोग्य में ला सकता है। इसी प्रकार श्रीरामजी जीव को जब जैसा चाहें तब तैसा रख सकते हैं भोग सकते है। जीव को उसमें बोलने का कुछ भी अधिकार नहीं है क्योंकि ईश्वर स्वतन्त्र है और जीव परतन्त्र है यही शेष भूत पद का मुख्य तात्पर्य है। और मैं आपका भोग्य हूँ आप मेरे भोक्ता हैं। भोग्य वस्तु भोक्ता के आधीन रहती है उसी प्रकार जीव भी ईश्वर का भोग्य है ईश्वर के आधीन है। वे जब जैसा चाहें तब तैसा मुझ जीव को भोग सकते हैं। यहां प्रथम पद से शेष शेषी सम्बन्ध को दिखलाकर दूसरे पद से भोक्तृ-भोग्य सम्बन्ध दिखाया। अब तृतीय पद से रक्ष्य रक्षक सम्बन्ध दिखलाते हैं कि मैं आपका रक्ष्य हूँ आप मेरे रक्षक हैं। रक्ष्य वस्तु रक्षक के आधीन मानी जाती है। रक्षक अपनी रक्ष्य वस्तु की अवश्य रक्षा करता है, इससे यह समझना कि मैं जब ईश्वर की राक्ष्य वस्तुओं में से हूँ तो ईश्वर मेरी अवश्य रक्षा करेंगे और करते भी हैं। मेरा तो धर्म यही है कि मैं पूर्ण विश्वास से श्रीरामजी को अपना रक्षक मानूं

और यह भी निश्चित है कि जिस समय जीव ईश्वर को अपना रक्षक समझेगा उसी समय भगवान् उसकी रक्षा करेंगे और जीव अमर हो जाएगा। यहां पर जो एव पद आया है वह यह निश्चित करता है कि श्रीरामजी को छोडकर अपना कोई रक्षक ही नहीं है। जीव सब प्रकार से श्रीरामजी द्वारा ही रक्षणीय है, अन्य देवताओं से नहीं। मैं अकिंचन हूँ अर्थात् श्रीरामजी को छोडकर मेरे पास और कुछ भी नहीं है। श्रीरामजी ही मेरे सर्वस्व हैं अर्थात् श्रीरामजी ही माता हैं पिता हैं बन्धु हैं सुहृत हैं और विद्या तथा धन सब श्रीरामजी ही हैं और मैं अनन्योपाय हूँ। आपको छोड़कर मेरे पास दूसरा उपाय (साधन) नहीं है मेरे लिए एकमात्र उपाय तो आप ही हैं। आपकी प्राप्ति के लिये दूसरा कुछ भी साधन नहीं है। आपकी प्राप्ति में साधनान्तरों का तो परम हितैषिणी श्रुति भगवती निषेध ही करती है कि परमात्मा प्रवचन, तीक्ष्ण बुद्धि, बहु शास्त्र श्रवण से नहीं प्राप्त होता है। प्रत्युत जिसको वह परमात्मा स्वीकार कर लेता है उसी को प्राप्त होता है और उसी को अपना स्वरूप दिखा देता है। इस श्रुति से भगवान की कृपा से ही भगवान की प्राप्ति हो सकती है। दूसरे उपायों से कदापि नहीं हो सकती। इससे जीव का मुख्यधर्म उपाय शून्यत्व है - यह दिखवाया। अतः अन्य उपायों का अवलम्बन लेना भ्रम मात्र है। ईश्वर को छोडकर ईश्वर की प्राप्ति के लिये और योग क्षेम के लिये उपायान्तरों से श्रीवैष्णवों को कुछ भी प्रयोजन नहीं है तथा मैं आपके एक मात्र कैंकर्य का भोक्ता हूँ आपका कैङ्कर्य ही मेरा एकमात्र भोग्य है। एतावता यह दिखवाया कि जो जीव के लिये विषय भोग प्राप्त हुए हैं वे उसके भोग्य नहीं है जीव का भोग्य तो केवल भगवत्कैङ्कर्य ही है। विषयों को अपना भोग्य समझना बहुत भारी भूल है। अतः "तव कैङ्कर्यमेव मम सदा प्रयोजनम्" सदा आपका कैङ्कर्य ही मेरा प्रयोजन है। यहां आचार्यपाद का वचन भी इसी का समर्थक है॥ १॥

अगतिश्चानुकूल्योऽहं प्रातिकूल्येन वर्जितः।
रक्षिष्यतीति विश्वासी स्वरक्षा प्रार्थनायुतः॥ २॥

अहम् अगतिः नास्ति गतिर्यम्यासौ अगतिः श्रीरामादन्य गतिशून्यः। आनुकूल्यः अनुकूलस्य भावः आनुकूल्यं तदस्ति यस्मिन् मयि इति आनुकूल्यः अर्शाद्यच्त्वात् अनुकूलसंकल्पवानित्यर्थः। प्रातिकूल्येन वर्जितः प्रतिकूलस्य भावः प्रातिकूल्यं तदस्ति यस्मिन्निति प्रातिकूल्यं तेन वर्जितः रहितः प्रतिकूलसंकल्प रहित इत्यर्थः। रक्षिष्यतीति विश्वासी श्रीरामो मामवश्यं रक्षिष्यति मम अवश्यं रक्षां करिष्यति, इति विश्वासी विश्वासयुक्तः स्वरक्षा प्रार्थनायुतः स्वस्य रक्षायाः प्रार्थना युतः अर्थात् हे श्रीराम मामभिरक्षयेति पौनः पुन्येन प्रार्थना परो भवामीत्यर्थः। एतेन शरणागति लक्षणम् "आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्यवर्जनम्। रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा। आत्मनिक्षेप कार्पण्यं षड्विधा शरणागतिः" इदं फलितम्॥ २॥

मैं अगति हूँ श्रीरामजी ही मेरी गति भूत हैं। अर्थात् श्रीरामजी को छोड़कर मुझे अवलम्बन देने वाला दूसरा कोई नहीं है। मेरे सर्वस्वगति अवलम्ब श्रीरामजी ही हैं तथा मैं अनुकूल संकल्प वाला हूँ अर्थात् आपकी कृपा से मैं अनुकूल संकल्पवान् हो गया हूँ। आपने ही प्रेरणा करके मुझे अनुकूलवान् बना लिया और प्रतिकूल के संकल्प से मैं वर्जित हूँ। आपकी प्राप्ति के जो विरोधी हैं उनके संकल्प से मैं रहित हूँ। आपकी कृपा ने मुझे ऐसा बना लिया है कि आपकी प्राप्ति के संकल्प को छोड़कर आपकी प्राप्ति के बाधक पुत्र, कलत्र, संसार का मैं संकल्प ही नहीं करता हूँ। यह आपकी कृपा है कि मैं ऐसा हो गया। श्रीरामजी मेरी रक्षा अवश्य करेंगे इस विश्वास से युक्त हूँ, अर्थात् मुझे यह विश्वास है कि श्रीरामजी मेरी रक्षा अवश्य करेंगे। श्रीरामजी को छोडकर दूसरा कोई भी मेरी रक्षा करनेवाला नहीं है। मैं अपनी रक्षा की प्रार्थना से युक्त हूँ अर्थात् हे श्रीरामजी मेरी आप अभितः रक्षा करें ऐसी बारम्बार प्रार्थना करना यह मेरा मुख्य धर्म है। इससे अनुकूल का संकल्प १ प्रतिकूल का वर्जन २ रक्षा करेंगे यह विश्वास ३ श्रीरामजी मेरे गोप्ता (रक्षक) है यह वरण करना ४ आत्मनिक्षेप ५ और कार्पण्य ६ यह जो षड्विध

शरणागति बताई गई है उसमें से चार प्रकार का वर्णन किये अब आत्मनिक्षेप और कार्पण्यरूपा शरणागति द्वितीय मन्त्र से वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

कृपणोऽहं दयासिन्धो सर्वपापकरस्तथा ।
स्वञ्च स्वीयञ्चयत्किञ्चित्त्वयिन्यस्यामिस्वीकुरु ॥ ३ ॥

हे दयासिन्धो - दयायाः कृपायाः सिन्धुः समुद्रस्तत्संबुद्धौ, अहं कृपणः दीनः सर्वपापकरः सर्वाणि पापानि कर्तुं शीलमस्यातीति सर्वेषाम् पापानामनुष्ठातेत्यर्थः अत्र ताच्छील्येऽप्रत्ययात् पापप्रवृत्तिमय एव स्वभावः इति तात्पर्यम् । स्वं आत्मानं स्वीयं यत्स्वसम्बन्धि पुत्र कलत्र धनादि तत्सर्वं त्वयि परमात्मनि श्रीरामेन्यस्यामि समर्पयामि । तत्सर्वं त्वं स्वीकुरुतस्य सर्वस्यापिस्वीकृतिस्त्वया कार्येत्यर्थः अत्र "कृपणोऽहं स्वञ्च स्वीयञ्चयत् किञ्चित्वयिन्यस्यामि इत्याभ्यां द्वाभ्यांपदाभ्यां आत्मनिक्षेपात्मिका" कार्पण्यात्मिका च शरणागतिरभिहिता भवति ॥ ३ ॥

हे दया के समुद्र मैं अत्यन्त कृपण हूँ, दीन हूँ और मैं सब पापों का करनेवाला हूँ अर्थात् मैं सदा सब पापों का ही अनुष्ठान करता हूँ। शुभाचरण तो मुझसे बनता ही नहीं है। मेरा स्वभाव पाप प्रवृत्तिमय हो रहा है अतः आप ही रक्षा करें। मेरी पाप-प्रवृत्ति को रोक कर अपनी तरफ कर लें तथा मैं अपने को और अपने सम्बन्धी - पुत्र, कलत्र, परिवार, धनादि को आपके चरणों में समर्पित करता हूँ अर्थात आपकी वस्तु का आपको ही समर्पण करता हूँ। उसे आप स्वीकार कीजिए। यहां पर कृपणः और स्वंच स्वीयञ्च यत् किञ्चित् त्वयिन्यस्यामि इन दोनों पदों से कार्पण्यरूपा और आत्मनिक्षेपरूपा शरणागति कही गई है ॥ ३ ॥

न्यस्याम्यकिञ्चनः श्रीमन्नात्मरक्षाभरं त्वयि ।
मेत्वत्प्राप्तिरुपायस्त्वं कृपया भव राघव ॥ ४ ॥

अहम् अकिञ्चनः - किञ्चनः कर्तुमसमर्थः त्वत्प्राप्तेरुपायान्तररहित इत्यर्थः अतएव हे श्रीमान् आत्मनो रक्षाया भरं भारं त्वयि श्रीरामे न्यस्यामि मदात्मनो त्वदधीनप्रवृतिकत्वात् त्वय्येव रक्षाभारं निवेशयामि त्वञ्च रक्षकत्वान्मे रक्षां कुरु। तथा च हे राघव स्वस्य प्राप्तेरुपायो मे मम कृपया त्वमेव भव ॥ ४ ॥

मैं अकिञ्चन हूँ, कुछ भी करने में समर्थ नहीं हूँ अर्थात् आपकी प्राप्ति के उपायान्तरों से रहित हूँ अतएव हे श्रीमान् !अपनी रक्षा का भार आप ही में न्यास करता हूँ क्योंकि मेरी आत्मा की प्रवृत्ति आपके आधीन है। इसलिए आपके द्वारा इसकी रक्षा योग्य ही है और आप मेरे रक्षक हैं - मैं आपका रक्ष्य ही हूँ इस हेतु से भी रक्षा कीजिए। हे श्रीराघव ! आप ही अपनी प्राप्ति के लिए मेरे उपाय रूप हो जाइए क्योंकि अपनी प्राप्ति के लिए जब आप ही उपायसिद्ध हैं तो मेरे लिए भी आप उपाय हो जाइए ॥ ४ ॥

एतच्चराचरं सर्वं यच्च यावच्च श्रूयते ।
सर्वमस्ति त्वदीयं हि श्रुतिभिश्चावगम्यते ॥ ५ ॥

यदेतत् यावद् यावत्परिमितं साकल्येनेत्यर्थः तत्सर्वं सम्पूर्णचराचरं, चरञ्च अचरञ्चेति तज्जङ्गमस्थावरात्मकं जगच्छ्रूयते तत्सर्वं त्वदीयमेव त्वत्स्वरूपत्वात् त्वया व्याप्यत्वाद्वा तवैवेदमिति "यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्द आत्मा यत्परब्रह्म भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमोनमः" "अहं ब्रह्म अयमात्मा ब्रह्म तत्वमसि"

एवमादिभिः श्रुतिभिः "वहिरन्तरतद्व्याप्यतस्य तादात्म्यतां गतमित्यादिभिः श्रुत्युपबृहणभूताभिः स्मृतिभिश्चावगम्यते ॥ ५ ॥

जो यह सम्पूर्ण जङ्गम और स्थावर रूप जगत् सुनने में आता है, वह सब आपका ही है क्योंकि यह जगत् आपका स्वरूप है आप इसके कारण हैं। कार्य कारण से अनन्य होता है इसी से कार्य को कारण स्वरूप ही माना गया है और आप इसके व्यापक हैं यह आपका व्याप्य है। अतः यह जगत् आपका है यह श्रुतियों से निश्चय होता है, अर्थात् वेदों से यह जाना जाता है कि सम्पूर्ण चराचर जगत् मात्र आपका है। इसका दूसरा स्वामी नहीं है, आप ही हैं अतः इसकी रक्षा करना परम कर्तव्य है क्योंकि अपनी वस्तु की रक्षा प्रत्येक व्यक्ति करता है, यह आपकी वस्तु है अतः आपके द्वारा इसकी रक्षा होनी ही चाहिए ॥ ५ ॥

न तादृशं दृढं ज्ञानं मयि स्वामिन् प्रतिष्ठितम्।
त्वन्तु सर्वं विजानासि सर्वं वस्तु ममेति च ॥ ६ ॥

हे स्वामिन् स्वामिगुणसम्पन्न मयि त्वया रक्षणीये सर्वोपायशून्ये तादृशरक्ष्यरक्षकस्वामिसेवकसम्बन्धविशिष्टं, सर्वं वस्तु त्वदात्मकमिति वा ज्ञानं दृढं न, किन्तु कादाचित्कमेव विद्यते सर्वं वस्तु मम मया च सर्वं रक्षणीयमिति स्वयं सर्वदा जानासि, सर्वज्ञत्वात्, स्वप्रकाशत्वात्, सदैकस्वरूपज्ञानत्वाच्चेत्यर्थः ॥ ६ ॥

हे स्वामिन् ! हमारे हृदय में तादृश ज्ञान दृढ रूप से स्थिर नहीं रहता है, अर्थात् रक्ष्य-रक्षक, स्वामि-सेवक सम्बन्ध वाला ज्ञान अथवा सब वस्तु आपकी ही है ऐसा ज्ञान, दृढ एकरूप से सदा एक रस नहीं रहता है। कभी कभी क्षणिक ज्ञान होता है परञ्च आप यह सर्वदा जानते हैं कि यह सब वस्तु मेरी है और इसकी रक्षा करना मेरा परम कर्तव्य है क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं, स्वप्रकाश स्वरूप हैं, सदा एकरूप ज्ञान वाले हैं, अतः आपका ज्ञान सदा दृढ रूप से एक रस बना रहता है कि सब वस्तु मेरी है और मेरे द्वारा ही रक्षणीय है ॥ ६ ॥

संसारसागरे भूमन् तत्त्वद्वस्तुनि मज्जितम्।
पश्यसि त्वं समर्थः सन् कारणं किं वद प्रभो ॥ ७ ॥

हे भूमन् सर्वा श्रयणाहि गुणकतत् मदात्मकं त्वद्वस्तु त्वदीयं वस्तु अहमित्यर्थः संसारसागरे, संसारः सागर इव तस्मिन् निमज्जितं निमग्नं त्वञ्च समर्थः सन् सर्वमेतत् पश्यसि समर्थः सन् त्वं संसारसमुद्रे निमज्ज्यमानं स्वकीयं वस्तु मां न परित्रासि, अथ च पश्यसि। अथ च स्ववस्त्वपरित्राणे किं कारणं तत्त्वमेव वद कथयेत्यर्थः ॥ ७ ॥

हे भूमन् ! यह सब जीवात्माएं जो आपकी ही वस्तु हैं वह संसार समुद्र में सब डूब रहीं हैं॥ आप ही हमें इस भव समुद्र निकालने में समर्थ हैं फिर भी सब देख रहे हैं। समर्थ होते हुए भी आप संसार सागर में डूबते हुए मेरी रक्षा नहीं करते हैं प्रत्युत देख ही रहे हैं इसका कारण क्या है ? कि आप मेरी रक्षा नहीं करते हैं। इसका उत्तर आप ही दीजिये ॥ ७ ॥

चेतनाचेतनं सर्वं मदीयं सत्यमस्ति वै।
जीवोऽप्यसौ मदीयश्चेत्यभिमानान्निमज्जते ॥ ८ ॥

यावत्स्वत्वाभिमानोऽस्य तावत्संसारसागरे।
निमज्जितोऽभिमानान्ते ह्युद्धरिष्यामिचेद्वद ॥ ९ ॥

चेद् यदि एवं मनुषे यत् चेतनाचेतनं जीवप्रकृतिमयं सर्वं जगत् मदीयमेवेति सत्यमस्ति चेतनाचेतनात्मकस्य जगतो मदीयत्वाज्जीवोऽप्यसौमदीयोऽस्त्येव। स्वकीये वस्तुनि स्वत्वाभिमानस्योचितत्वात् परकीयवस्तुनि स्वत्वाभिमानं करोति तस्मात् निमज्जते परन्तु मदीये वस्तुनि यावत् अस्य जीवस्य स्वत्वाभिमानस्तावदसौ जीवः संसारसागरे निमज्जितो वर्तते यदास्य मदीयवस्तुनि स्वत्वाभिमानस्य अन्तो नाशो भविष्यति अर्थाज्जीवो यदैवं वेत्स्यति यन्मत्सहितं सर्व चेतनाचेतनं जगत् परमात्मन एव तदोद्धरिष्यामि संसार सागरान्निसारयिष्यामि इति वद कथयेत्यर्थः ॥ ८-९ ॥

यदि आप यह कहें कि यह चेतन और अचेतन अर्थात् जीव और प्रकृति रूप सब जगत् मेरा ही है और जीव भी मेरा ही है अपनी वस्तु में अपनेपन का अभिमान होना स्वाभाविक है, परकीय वस्तु में स्वत्वाभिमान अनुचित है जीव मेरी वस्तु है उसमें जीव जो स्वत्वाभिमान करता है वह उसके लिए अनुचित है। इसी कारण से संसार में डूबा हुआ है ॥ ८ ॥

परञ्च मेरी वस्तु में जीव को जब तक स्वकीयपने का अर्थात् यह सब मेरी वस्तु है ऐसा अभिमान रहेगा तब तक संसार सागर में डूबा रहेगा और जब अभिमान का नाश हो जाएगा अर्थात् जीव स्वत्वाभिमान को त्यागकर जब अपने सहित (सम्पूर्ण चेतन और अचेतन जगत परमात्मा का है) ऐसा जब ज्ञान होगा तब उद्धार करूँगा ऐसा यदि आप कहें तो उसका उत्तर सुनिए ॥ ९ ॥

सत्यमहं मदीयञ्च सर्वमन्यत्तवास्ति वै।
तथाप्येषोऽभिमानो मे हेतुस्तवनियोजनम् ॥ १० ॥

अहं मदीयं च मत्सम्बन्धि पुत्रकलत्रधनादिकमन्यच्च यावत्पदार्थजातं तत्सर्वमेव तवैव सत्यमस्ति निश्चयेन। तथा त्वदीय एतस्मिन् वस्तुनि य एष मम अभिमानः स मिथ्याभूत एव, यदयं मम मिथ्याभूतोऽभिमानस्तस्य तव नियोजनप्रेरणमेव हेतुः तदुक्तम् "येनापिदेवेन हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि", स एव साधु कर्म कारयति यमूर्ध्वं निनीषति, स एवासाधुकर्म कारयति यमधोनिनीषति ॥ १० ॥

हे नाथ मैं और मेरे सम्बन्धी जितनी वस्तु हैं वे अथवा अन्यत् भी जितना पदार्थ देखने सुनने में आता है वह सब यथार्थतया आपका ही है। तथापि उसमें जो मेरा अभिमान हो गया है कि यह पदार्थ मेरा है - यह मेरा अभिमान झूठा है यथार्थ नहीं, क्योंकि त्वदायत्त पदार्थ में सदाऽऽयत्तत्व का अभिमान करना असत्य ही है। परञ्च हमारे इस मिथ्याभूत अभिमान का कारण आपकी प्रेरणा ही है, आपकी जब ऐसी प्रेरणा होती है कि इसको इस प्रकार का अभिमान हो तभी तो मुझे अभिमान होता है बिना आपकी प्रेरणा के मुझे ऐसा अभिमान हो ही नहीं सकता क्योंकि मेरे सब तरह के प्रेरक आप ही हैं। तब मेरा यह अभिमान भी आपही का हुआ मेरा नहीं और जब यह अभिमान आपका सिद्ध हुआ तो इस अभिमान से मुझे जो संसार पतनरूप दुःख मिलता है वह नहीं मिलना चाहिए ॥ १० ॥

अहं मदीयञ्चेत्येषोयोऽभिमानो दुरत्ययः।
त्वयिन्यस्यामितंस्वामिन्त्वदीयंतंहिस्वीकुरु॥ ११॥

हे स्वामिन् अहं मदीयञ्च (अहङ्कारममकाररूपः) य एष अभिमानः अमितः सर्वतः मानः स दुरत्ययः दुःखेन अत्ययो नाशः, कर्तुमयोग्यः तमहं भूमाभिमानं त्वयि सत्याभिमानिनि मिथ्याभिमानी अहं न्यस्यामि न्यासं करोमि तं स्वीकुरु। मिथ्याभूतमदीयाभिमान स्वीकारेण मां स्वीकुरु कृतार्थयेत्यर्थः॥ ११॥

हे स्वामिन्! यह मैं हूँ - यह सब मेरा है, यह जो मुझे अभिमान हो रहा है ये मेरे छुड़ाए नहीं छूटेगा क्योंकि वह दुरत्यय अर्थात् दुःख से भी उसका नाश नहीं हो सकता है। तात्पर्य यह है कि यह अभिमान भी तो आपकी ही प्रेरणा से प्राप्त हुआ तब मुझसे कैसे छूट सकता है। आप ही फिर इस तरह का संकल्प करें कि "इस जीव का अहं (ममाभिमान) छूट जाए"। आपके ऐसा कहते ही छूट जाएगा। "जोई बांधे सोई छोरे" अतः हे प्रभो इस अभिमान का मैं आप में न्यास करता हूँ। अर्थात् आपको ही अर्पण करता हूँ आप इसको स्वीकार करें॥ ११॥

निर्हेतुकृपया सर्वं स्वीकृत्य करुणानिधे।
अहं ममाभिमानं मे निखिलं छिन्धि मूलतः॥ १२॥

हे करुणानिधे मे मम सर्वं अहं ममाभिमानं निर्हेतुकृपया हेतु रहितया कृपया स्वीकृत्य अंगीकारं कृत्वा अथ च तं निखिलं सम्पूर्णं ममाभिमानं मूलतश्छिन्धि मूलविनाशेन शाखापल्लवसमन्वितो यथा भूरुहो विनश्यति तथैव त्वदीयनिर्हेतुक्या कृपया मूलतोऽहं ममाभिमानं शाखापल्लवान्वितसंसारवृक्षं विनश्यत्येवेत्यर्थः॥ १२॥

हे करुणानिधे मुझे अहं पने का अर्थात् मैं धनी हूँ मैं ब्राह्मण हूँ मैं विद्वान् हूँ यह जो अभिमान और यह सब पुत्र, कलत्र, गृह धनादिक मेरे हैं यह जो अभिमान हो रहा है इसको आप अपनी निर्हेतुकी कृपा से स्वीकार कीजिए क्योंकि मैं यह प्रथम ही प्रार्थना कर चुका हूँ कि इसको मैं आपके चरणों में समर्पित करता हूँ। इसका कारण यह है कि आपका तो यह नियम है कि 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तदहं भक्त्युपहृतं ह्यश्नामि प्रयतात्मना" अर्थात् भक्तजन भक्ति पूर्वक जो कुछ मुझे समर्पण करते हैं उसे मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ। अतः मेरे पास जो कुछ है उसे मैं भी समर्पण करता हूँ। आप अपनी निर्हेतुकी कृपा से इसे स्वीकार करें और उसी अपनी निर्हेतुकी कृपा से इस अभिमान का जड़ से छेदन कर दीजिए। यद्यपि आपकी कृपा प्राप्त करने के लिए मेरे पास कोई साधन नही है अतः आपही अपनी निर्हतुकी कृपा करें क्योंकि आप कारण रहित कृपालु हैं - कारण के बिना ही कृपा करने वाले हैं उसी कृपा से इस मिथ्याभूत अभिमान का मूल कारण अज्ञान है अतः मूलतः अर्थात् अज्ञान के सहित इस अभिमान को छुड़ाइये और मुझे अपना शुद्धदास बनाइये॥ १२॥

यदिनास्त्यानुकूल्यादिर्मयिस्वामिन्यथार्थतः।
बद्धाञ्जलिपुटं दीनं रक्ष मां शरणागतम्॥ १३॥

हे स्वामिन् यदि मयि यथार्थतोऽनुकूलादिः षड्धा शरणागतिः नास्त्येव तथापि बद्धाञ्जलिपुटं बद्धम् अञ्जलिपुटं येन स तं ललाटन्यस्तमुकुलितहस्तंदीनं शरणागतं श्रीमतः शरणे प्राप्तं मां रक्ष। अयमन्त्राभि सन्धिः यद्यपि मय्यानुकूल्यादिषड्विधासुशरणागतिषु कापि नास्ति तथापि 'बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम्'। 'न हन्यादानृशंस्यार्थं मयि शत्रु परन्तप। आर्ती वा यदि वा दृप्तं परेषां शरणं गतः। अरिः प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्यः

कृतात्मना' "सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम" इत्युक्तां स्वकीयां प्रतिज्ञातमवलोक्य मामभिरक्षेत्यर्थः ॥ १३ ॥

हे स्वामिन् यद्यपि मुझमें अनुकूल का संकल्प - प्रतिकूल का वर्जन आदि जो षड्विध शरणागति यथार्थतः नहीं है तथापि मैं हाथ जोड़कर दीन होकर शरण में आया हुआ हूँ अतः आप मेरी रक्षा कीजिए। तात्पर्य यह है कि छः प्रकार की शरणागति में से मेरे में एक भी नहीं है तथापि हाथ जोड़कर दीन होकर याचना करते हुए अपनी शरण में आए हुए शत्रु को आप न मारिए, क्योंकि आर्त हो वा दृप्त हो परञ्च शरण में आए हुए शत्रु की प्राणों को देकर भी रक्षा करनी चाहिए। जो एक बार भी "मैं आपका हूं" ऐसा कहता है और शरण को प्राप्त होता है उसे मैं सब भूतों से अभय प्रदान कर देता हूँ यह मेरा व्रत है, प्रतिज्ञा है। इस अपनी प्रतिज्ञा को स्मरणकर मेरी रक्षा कीजिए ॥ १३ ॥

यथाहं च मदीयं च न मे रामस्य तत्वतः ।
भाति मे हृदये सम्यक् तथा कुरु दयानिधे ॥ १४ ॥

हे दयानिधे अहं च मदीयं चेदं सर्वं तत्वतो यथार्थतः मे मम न, किन्तु श्रीरामस्यैव चिदचिदात्मकं सर्वं वस्तु जातमिति सम्यक् पूर्णबोधतया यथा येन प्रकारेण मे मम हृदये भातु उदयतु तथा कुरु तादृशानुकम्पा विधेया येनैतस्मिन् वस्तुनि सदा तावकीयत्वबोधः स्थिरः स्यादित्यर्थः ॥ १४ ॥

हे दयानिधे ! अमुक नाम से प्रसिद्ध अमुक जाति वाला मैं हूँ - ऐसा जो मैंने अपने को समझ लिया है वह, और पुत्र, कलत्र, धन, घर प्रभृति जगत मेरा है - ये दोनों ही मेरे अभिमान झूठे हैं क्योंकि तत्वतः यह मेरे नहीं है। किन्तु मैं और मेरा - यह सब श्रीरामजी का है इस प्रकार का ज्ञान मेरे हृदय में जिस प्रकार पूर्णरूप से प्रकाशित हो वैसा ही अपनी ओर से कीजिए ॥ १४ ॥

त्वन्मायया मलीमसं हृदयं निर्मलं कुरु ।
येनाऽहं संविजानामि त्वां त्वदीयं च तत्वतः ॥ १५ ॥

तव माययाऽविद्यया मम हृदयं मनः मलीमसं दूषितम् तद् हृदयं त्वं निर्मलं कुरु। येन निर्मलेन हृदयेन त्वां मत्प्रेरकं तत्वतः संविजानामि, इदं सर्वं परिदृश्यमानं चराचरं जगत् त्वदीयं, त्वमस्य जगतः कर्ता प्रेरकः नियामकश्च । जगदेतच्च तवकार्यं त्वया प्रेर्यं नियाम्यं च, तव कार्यं त्वदधीनमित्यर्थः । एतत् सर्वं तत्वतो यथार्थतोहं संविजानामि तथा मे ज्ञानं सम्पादयेत्यर्थः ॥ १५ ॥

हे प्रभो ! मेरा मन आपकी माया से मलिन हो गया है। इसे आप निर्मल कर दीजिए जिससे मैं उस निर्मल मन द्वारा आपको अर्थात् आपके स्वरूप को जान सकूँ। आप ही प्रेरक हैं और नियामक है और यह जगतरूप कार्य आपका है आपके आधीन है यह सब मैं यथार्थतया जान सकूँ ऐसा ज्ञान मुझे प्रदान कीजिए। यह ज्ञान आपके द्वारा प्रदान करने से मुझे मिल सकता है। दूसरे किसी प्रकार से या किसी साधन से यह ज्ञान नहीं मिल सकता है ॥ १५ ॥

त्वत्कृपा दृष्टि मात्रेण तद्धि सर्वं भविष्यति ।
न वै परिश्रमः कश्चित्तव तत्र दयानिधे ॥ १६ ॥

हे दयानिधे त्वत्कृपादृष्टिमात्रेण तव कृपाया अवलोकनादेव तत् त्वत्स्वरूपबोधं च सर्वं ज्ञानं ममं हृदये भविष्यति। तत्र तादृशज्ञानोत्पादने तव कश्चित् परिश्रमो न भविष्यति । मन्मनसि तादृशज्ञानोत्पादनेच्छावत्या कृपया श्रीमतावलोकित एवानायसेनैव तादृशज्ञानमुदेष्यतीति तात्पर्यम् ॥ १६ ॥

हे दयानिधे ! आपका निजस्वरूप बोधक और चराचरस्वरूप बोधक ज्ञान आपकी कृपा दृष्टि मात्र से ही मुझे हो जाएगा, बस आपकी कृपा होनी चाहिये, यह ज्ञान आपकी कृपा से ही होगा। दूसरे उपायों से नहीं होगा। मैं यदि अन्य उपाय करूँ भी फिर भी वैसा ज्ञान (अर्थात् आप इस विश्व के कर्ता हैं कारण हैं यह विश्व आपका कार्य है, आपके आधीन है, क्योंकि कारण की शक्ति के अधीन ही कार्य रहता है, अतः आपकी ही शक्ति सब काल में इसका नियमन करती है) यह ज्ञान आपकी कृपा के बिना प्राप्त ही नहीं हो सकता है तथा आपको मेरे ऊपर कृपा दृष्टि करने में और मेरे हृदय में वह ज्ञानोत्पादन करने में कुछ भी परिश्रम नहीं है। अनायास ही हो जाएगा, केवल कृपावलोकन मात्र की देरी है प्रभु ! कृपावलोकन से ही मुझे तादृश ज्ञान प्राप्त हो जाएगा ॥ १६ ॥

प्रार्थयामि महादीनो दीनोद्धार कृपानिधे।
एतद्देहावसाने मां स्वं प्रापय दयाकर ॥ १७ ॥

हे दीनोद्धार दीनान् मायया संतप्यमानानुद्धरतीति तत्सम्बोधनं दीनोद्धार संकल्पशीलेत्यर्थः । हे कृपायाः निधे कृपासमुद्र महादीनोऽहं प्रार्थयामि यत् हे दयाकर एतद्देहस्य अवसाने अन्ते मां स्वकृपापात्रं स्वात्मानं प्रापयेत्यर्थः ॥ १७ ॥

हे दीनोद्धार ! दीनों के उद्धार करने के कारण ही आपका नाम दीनोद्धार है, आप दया के निधि (समुद्र) हैं, अतएव आप दयानिधि कहलाते हैं, और दीनों के ऊपर आपकी दया सर्वदा अधिक रूप से रहती है, अतएव आपको भक्तजन दयाकर कहते हैं, हे दयानिधे! मैं महान दीन हूँ, सर्वसाधन धन हीन हूँ, अतः आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे इस देह के अन्त में अपने स्वरूप की प्राप्ति करा दीजिए। तात्पर्य यह है कि यद्यपि मैं सब पापों से युक्त हूँ और कुछ भी साधन मेरे पास नहीं है इसी कारण से आपको दयाकर, दयानिधि, तथा दीनोद्धार समझ कर महादीन मैं - यह प्रार्थना करता हूँ कि इस देह के अन्त में मुझे अपनी प्राप्ति करा दीजिए अर्थात् - मैं जिस प्रकार से आपको प्राप्त हो सकूँ वैसा ही कीजिए ॥ १७ ॥

स्वदत्तज्ञानदीपेन नाशयाज्ञानजंतमः।
स्वतत्व ज्ञान पूर्वं मां स्वार्थं स्वमर्पयस्वयम् ॥ १८ ॥

स्वदत्तज्ञानदीपेन स्वेन दत्तं यज्ज्ञानमेव दीपस्तेन अज्ञानजं अज्ञानेन जातं तमः अन्धकारं नाशय नाशयाम्यात्मभावस्था ज्ञानदीपेन भास्वता, इति भवता प्रतिज्ञातत्वादित्यर्थः। तथा स्वतत्वज्ञानपूर्वं स्वस्य तत्वस्य ज्ञानं तत्पूर्वं स्वस्वरूपबोधकबोधपुरस्सरं स्वार्थं स्वं स्वकीयमात्मानं मां मह्यमित्यर्थः स्वयं त्वमेव प्रापयेत्यर्थः ॥ १८ ॥

हे प्रभो ! अपने से दिए हुये ज्ञानरूपी दीप से मेरे अज्ञान से जायमान अन्धकार का नाश कीजिए और अपने तत्व का ज्ञान कराकर मेरा आपको समर्पण कीजिए। यही तो मेरा सच्चा स्वार्थ है, क्योंकि भगवान की प्राप्ति वा प्रीति ही जीव का सच्चा स्वार्थ है ॥ १८ ॥

यानि सञ्चितपापानि तानि नाशय मे प्रभो।
अकृत्येषु प्रवृत्तिं मे वारय बुद्धिप्रेरक ॥ १९ ॥

हे प्रभो सञ्चित, प्राब्ध क्रियमाणेषु त्रिविध कर्मसु सञ्चितपापानि, सञ्चितकर्माणि, अत्र पापशब्देन भगवत् स्वरूपप्राप्तिविरोधीनि कर्माण्युच्यन्ते पुण्यपापात्मकयोरुभयोरपि कर्मणा इन्द्रादिलोकनरकादि प्रदत्तत्वेन मोक्षविरोधित्वात्, यानि यावत्परिमितानि तानि सर्वाण्यपि नाशय। तथा च हे बुद्धिप्रेरक बुद्धिप्रेरयतीति तत्सम्बोधनं हे गायत्रीप्रतिपादितदेव श्रीराम अकृत्येषु त्वत्स्वरूपप्राप्तविरोधिषु मे मम प्रवृत्ति वारय प्रतिरोधयेत्यर्थः । नन्वेतेन सञ्चितक्रियमाणयोरेव कर्मणोर्विनाशः स्यात् नतु प्रारब्धस्य तथा च तयोर्विनाशस्तथा प्रारब्धस्य कथं विनाशो न स्यादिति चेत् उच्यते यदि प्रभुः स्वकीययानिर्हेतुक्या कृपया प्रारब्धमपि विनाशयेत् तर्हि प्रारब्धावसाने शरीरपातः स्यात् अथ च भगवत्कृपायां सत्यां शरीरस्य नाशो भवतीति प्रवादोपि स्यात्ततश्च तदीयकृपानुलाभाय कश्चिदपि न पतेत्, ततश्च स्वकीया कृपानिरवकाशा न भवेदिति कृत्वा सञ्चित क्रियमाणे कर्मणी विनाश्यापि प्रारब्धं कर्म न विना शयति। अतएव "इतरं तु भोगेनैव क्षपयित्वा" इतरस्य प्रारब्धस्य कर्मणो भोगेनैव क्षपणमुक्तमित्यर्थः ॥ १९ ॥

हे सर्वशक्तिमान् प्रभो! सञ्चित, क्रियमाण और प्रारब्धरूप कर्मों में से मेरे सञ्चित कर्मों का आप नाश कर दीजिए। यहां पर पाप पद से भगवान के स्वरूप प्राप्ति के विरोधी कर्म कहे जाते हैं क्योंकि पुण्यात्मक शुभ कर्मों से इन्द्रादि लोकों की प्राप्ति होगी। ये दोनों कर्म भगवत्प्राप्ति के विरोधी हैं अतः ये सब पाप पद वाच्य है इसलिए इन दोनों प्रकार के मेरे कर्मों का नाश कर दीजिए, अर्थात् मुझे ऐसा कर दीजिए कि मैं उनमें पुनः कभी प्रीति न कर सकूँ। क्योंकि इन सञ्चित कर्मों के बने रहने से मेरी बुद्धि उन्हीं में लगी रहती है जिस कारण उन्हीं में प्रवृत्ति अधिक होती है और जब आप सञ्चित कर्मों का नाशकर देंगे तो बुद्धि शुद्ध होकर आप में लगेगी। और हे बुद्धिप्रेरक अर्थात् हे गायत्री प्रतिपाद्य देव श्रीरामजी! आप मेरी बुद्धि की अकृत्यों(जो कार्य करने योग्य नहीं उन) में प्रवृत्ति रोकिये। आप जब अपनी परम कृपा से मेरी बुद्धि को शुद्ध करके अपनी तरफ इसे प्रेरित करेंगे तभी आपकी ओर मेरी प्रवृत्ति होगी और दूसरी तरफ से प्रवृत्ति हटेगी। बुद्धिप्रेरक कहने से वेदों का मुख्य मन्त्र जो गायत्री है, उसके प्रतिपाद्य देव आप ही को जाना जाता है क्योंकि गायत्री में "धियोयोनः प्रचोदयात्" बुद्धिप्रेरकत्वेन प्रार्थना के पद आते हैं अत एव बुद्धिप्रेरक इस सम्बोधन से आपको ही गायत्री प्रतिपाद्य सिद्ध किया गया। जैसे कि श्रीरामस्तवराज में आपका "भर्गं वरेण्यं विश्वेशं" "आदित्यरविमीशानम् सूर्यमण्डलमध्यस्थमि"त्यादि मन्त्रों द्वारा गायत्री प्रतिपाद्यत्व प्रतिपादित किया गया है। तात्पर्य यह है कि यदि श्रीरामजी कहें कि तुम हमसे इतनी प्रार्थना क्यों करते हो तो उसके उत्तर में कहा गया है कि आप ही तो बुद्धियों के प्रेरक हैं दूसरा तो है नहीं फिर किस से प्रार्थना करूँ ॥ १९ ॥

यथानिर्मुच्य पापेभ्यस्त्वत् प्राप्तेर्योग्यता भवेत्।
मयि स्वामिन् हरे राम तथा त्वं मां स्वयंकुरु ॥ २० ॥

हे हरे स्वप्राप्ति विरोधीनि सर्वाणि दुरितानि हरतीति हरिस्तत्सम्बोधनं मयि सर्वेभ्यः पापेभ्यो निर्मुक्तो भूत्वा त्वदीयस्यां प्राप्तेः योग्यतास्यात् तथा हे स्वामिन् श्रीराम मां त्वं स्वयमेव कुरु । एतेन "हिरण्मयेन पात्रेण

सत्यस्यापिहितं सुखम्। तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्मा य दृष्टये" इति मन्त्रोक्तमुपबृंहितम्। यतो हिरण्मयेन सांसारिक भोगविलासेच्छया सत्यस्य जीवस्य मुखम् पिहितं, विषयेच्छयात्वत्प्राप्तिसाधनीभूतायास्त्वदीयायाः कृपायाः विमुखीभूय वर्तते जीवः। हे पूषन् स्वनिर्हेतुककृपावलोकनपुरःसरं स्वप्राप्तिसाधनीभूतभक्तिरूपशक्तिंदत्वा जीवस्य धर्मभूतज्ञानम् अपावृणु अनाच्छादितं कुरु येन सत्यस्य धर्मणोदर्शनं भवेत्। तादृशीं योग्यतां देहि येन त्वद्दर्शनं त्वत्प्राप्तिर्भवेदित्यर्थः॥ २०॥

हे स्वामिन् हे हरे हे श्रीरामजी! मुझ में पापों से मुक्ति पूर्वक आपकी प्राप्ति की योग्यता हो जाए ऐसा आप स्वतः कीजिये अर्थात् प्रथम आप मेरे पापों को दूर करें क्योंकि अपनी प्राप्ति के विरोधी पापों को आप दूर करनेवाले हैं इसलिए आपको हरि कहते हैं। और उसके बाद अपनी प्राप्ति की योग्यता मुझे प्रदान करें ताकि मैं आपको प्राप्त कर सकूँ। यह सब आपके चाहने से ही हो सकेगा क्योंकि आप बुद्धि के प्रेरक हैं अतः प्रेरणा करके उसे पापों से हटा देंगे। तब आपकी प्राप्ति की योग्यता मुझमे स्वयं आ जाएगी, क्योंकि पाप ही तो आपकी प्राप्ति के विरोधी थे। उनको आपने जैसे हटाया वैसे ही त्वत्प्राप्ति योग्यता हो जाएगी। जैसे भोजन करने से क्षुधा की निवृत्ति होती है। उसकी दृष्टि पुष्टि आदि अपने आप ही होते हैं उनके लिए कोई अतिरिक्त प्रयास नहीं करना पड़ता। केवल भोजन करने में ही प्रयास है उसी प्रकार आपको मेरे पाप निवर्तन करने में ही प्रयास करना होगा। त्वत्प्राप्ति योग्यता स्वतः ही हो जाएगी॥ २०॥

न मे पापविनिर्मोके नापि त्वत्प्राप्तिसाधने।
शक्तिस्तत्र समर्थस्त्वं स्वप्राप्तेः साधनं भव॥ २१॥

हे कमलेक्षण पापविनिर्मोके पापानां त्वत्प्राप्ति विरोधिनां दुरितानां विनिर्मोके विनिवृतौ यथा च त्वत्प्राप्तिसाधने तव प्राप्त्यै साधनं कर्तुं मे मम शक्तिः सामर्थ्यं नास्ति तत्र तदुभयं कर्तुं त्वमेव समर्थः शक्तः। अतः हे करुणावरुणालय स्वस्य प्राप्तेः साधनं त्वं स्वयमेव भवेत्यर्थः॥ २१॥

हे कमलेक्षण श्रीरामजी! पापों से मुक्त होने की और आपकी प्राप्ति के साधन करने की मुझ में शक्ति नहीं है। आप ही इन दोनों में समर्थ हैं अतः आप अपनी प्राप्ति के साधन स्वयं बन जाइए। अर्थात् मैं पापों से मुक्त होकर आपकी प्राप्ति के साधनों में लग जाऊँ ऐसी मुझमें शक्ति नहीं है और आप तो दोनों में समर्थ हैं अर्थात् मुझे पापों से हटाना और अपनी प्राप्ति के साधनों में लगाना ये दोनों बातें आप से ही हो सकेंगी क्योंकि आप समर्थ हैं। आपके सामर्थ्य से सहज में ही यह दोनों बातें हो जाएँगी। मुझसे तो यह बात कोटि कल्प तक भी नहीं बनेगी और आप चाहेंगे तो पलक के चतुर्थांश में बना देंगे अतः आपसे प्रार्थना है नाथ! कि अपनी प्राप्ति के साधन आप स्वयं हो जाइए॥ २१॥

स्वाग्रे मां पतितंदृष्ट्वाश्रुत्वा च प्रार्थनामिमाम्।
अङ्गीचकार श्रीरामस्तदप्यस्मीह निर्भरः॥ २२॥

अथ श्रीरामः स्वस्य अग्रे मां पतितं "अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमः उक्तिं विधेम" इतिश्रुत्युक्तविधया देव प्रसादने सर्वस्वभूतां साष्टाङ्ग नमस्कृतिं कुर्वाणं मां दृष्ट्वा इमां पूर्वोक्तां मदीयां प्रार्थनां च श्रुत्वा माम् श्रीरामः अङ्गीचकार तस्मात् अहं इह अस्मिन्

जन्मनि निर्भरोस्मि स्वभरणपोषणरक्षण विषयिणी चिन्ता रहितोस्मि ॥ २२ ॥ इत्येतैः द्वाविंशति श्लोकैः प्रपत्तिः श्रीमदग्रस्वामिना कृता ॥

श्रीरामजी ने अपने सामने पड़े हुये अर्थात् साष्टाङ्ग नमस्कार करते हुए मुझे देखकर और मेरी इस प्रार्थना को सुनकर मुझे अङ्गीकार कर लिया। इसलिए अब मैं इस जन्म में आगे के लिये अत्यन्त निर्भर हो गया अर्थात् अब मुझे अपने रक्षण की कोई चिन्ता नहीं रह गई ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमदग्रदेवाचार्यकृता प्रपत्तिः सम्पूर्णा ॥